# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत–२५४६ : अंक–२६३, वर्ष –२४, अक्टूबर–२०१९


**आषाढ़ कृष्ण २, सोमवार, दि. ४–७–१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा–६९, प्रवचन–२५**

योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि भरतक्षेत्र में बहुत सैंकड़ों वर्ष पूर्व हुए, उन्होंने यह 'योगसार' बनाया है। योगसार, अर्थात् ...इस आत्मा का शुद्ध स्वभाव, पवित्र अनादि है, उसमें एकाकार होना, वह धर्म का सार है। कुछ समझ में आया? आत्मा... देखो! ६९ में यह आता है – **जीव सदा अकेला है।**

**उक्क उपज्जइ मरइ कु वि दुहु सुहु भंजइ इक्कु।**
**णरयहं जाइ वि इक्क जिउ तह णिव्वाणहँ इक्कु।। ६९।।**

देखो! क्या कहते हैं? जीव अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरता है। अकेला जीव मरता है, देह छूटती है तो स्वयं को अकेले को ही मरना पड़ता है। कोई स्वजन, परिवार साथ नहीं आ सकता और अकेला जन्मता है। जन्म में भी कोई साथ नहीं है। पूर्व के कोई कुटुम्बी, उनके लिए पाप किये हों तो साथ कोई आता है? नरक में जन्म ले, पशु में जन्म ले; स्वयं अकेला जन्मता है और अकेला मरता है, कोई साथ में नहीं है।

**इक्क जिप णरयहं जाइ** – जैसे भाव किये हों, वैसे अपने भाव लेकर नरक में जाता है। अकेला नरक में जाता है, कोई कुटुम्ब-परिवार साथ नहीं आता। मैंने तुम्हारे लिए पाप किये, हमारे साथ तो चलो! और **इक्क णिव्वाणहं – तथा अकेला जीव फिर निर्वाण पाता है।** अपना शुद्धस्वरूप, परमानन्द परमस्वरूप, उसकी एकत्वबुद्धि / दृष्टि एकान्त निर्मल करके, अपने स्वभाव में स्थिर होकर आत्मा अपने से स्वयं से अकेला मोक्ष में जाता है। कहो, समझ में आता है? कोई गुरु भी साथ में नहीं आते, केवली भी साथ में नहीं आते, शास्त्र साथ में नहीं आते, संघ साथ में नहीं आता; अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसको पुण्य-पाप के राग से भिन्न करके, निज स्वरूप में एकत्व करके अपना आत्मा ही अपने को निर्वाण प्राप्त कराता है, उसमें किसी की मदद-सहायता नहीं है। कहो, समझ में आता है?

**यहाँ एकत्व भावना का विचार किया गया है।** इस श्लोक में एकत्व भावना – मैं अकेला हूँ – (उसका विचार किया है।) **इस जीव को अकेले.. जन्मना और अकेले ही मरना पड़ता है। प्रत्येक जन्म में माता–पिता, भाई–बन्धु इत्यादि मित्रों और अन्य चेतन–अचेतन पदार्थों का संयोग होता रहा और छूटता रहा है।** अनेक जन्मों में कुटुम्ब का संयोग हुआ और संयोग छूट गया, स्वयं तो अकेला ही रहा, कोई साथ नहीं आया – ऐसा जानकर अपने स्वरूप का अन्तर साधन करना – यह कहते हैं। योगसार है न? समझ में आया? **इस जीव को अकेले ही सबको छोड़कर दूसरी गति में जाना पड़ा। एक पाप–पुण्य कर्म ही साथ रहा।** जैसा पुण्य और पाप किया, वे साथ आये, दूसरा तो कोई

साथ आता नहीं।

**कर्मों का बन्ध अकेला ही भोगता है।** समझ में आया? शास्त्र में-कथा में-एक दृष्टान्त है कि छोटे भाई के लिये बड़े भाई ने बहुत पाप किये थे। छोटा भाई रोगी था, बड़ा भाई उसे माँस, अण्डे लाकर खिलाता, उसे पता नहीं कि यह माँस है, फिर बड़ा भाई मरकर नरक में गया और छोटा भाई जम, परमाधामी हुआ। दोनों सगे भाई, जिसके लिये पाप किये थे वह मरकर परमाधामी हुआ, पाप करनेवाला नारकी हुआ। (परमाधामी उसे) मारता है। अरे...! भाई! परन्तु मैंने तेरे लिये किया था न! मेरे लिये (करने का) कौन कहता था? तुम्हारे लिये मैंने पाप किये थे और तेरे लिये कुपथ्य / अण्डा लाकर दिये थे, माँस, लाकर दिया, मछली का माँस दिया, यह हलुआ है - ऐसा कहकर मैंने दिया था। (तो परमाधामी कहता है) मुझे तो पता नहीं, तूने ऐसा क्यों किया? मैं तो परमाधामी हुआ हूँ, इसलिए मैं तो मारूँगा। समझ में आया? यह पुण्य और पाप जैसे शुभाशुभ (भाव) किया है (वे) अकेले को भोगना पड़ते हैं।

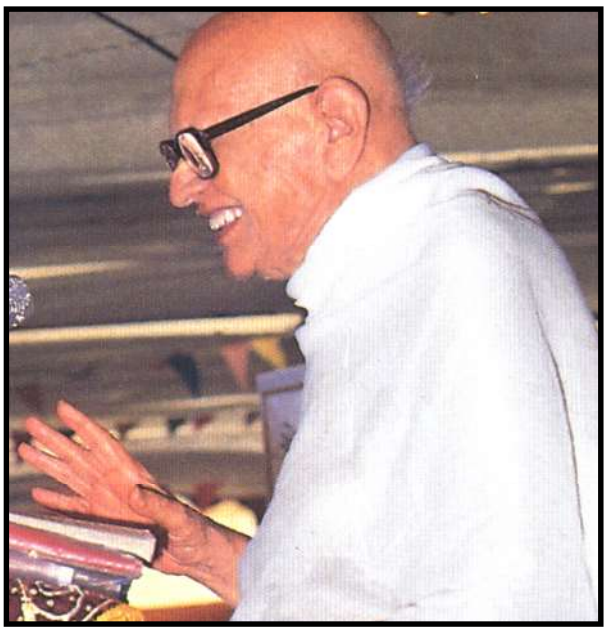

परिवार के लिये करे तो कहते हैं **नरक आयु का बन्ध पड़ता है तो यह जीव अकेले ही नरक में जाकर दुःख सहना पड़ता है। कोई कुटुम्बीजन उसके साथ नहीं आ सकता।** आ सकता है कोई? और **अपने साथ कोई मित्र-स्त्री, पुत्र को नहीं ले जा सकता।** भाई! चलो, तुम मेरे अत्यन्त नजदीकी मित्र थे, साथ तो आओ, साथ तो आओ! हम तो पचास-साठ-साठ वर्ष साथ रहे, स्त्री-पत्नी साठ-सत्तर वर्ष साथ रहे, लो! चलो मैं जाता हूँ, तुम भी साथ आओ। हर एक जीव की सत्ता निराली है। किसी की सत्ता किसी के साथ (मिली हुई) नहीं है। जिसने जैसे भाव किये वैसा वह (भोगता) है।

**कर्मों का बन्ध निराला है भावों का पलटना निराला है...** समस्त जीवों का कर्मबन्धन निराला और भावों का (पलटना) भी निराला और **साता और असाता का भोगना निराला है।** ठीक है, रतनचन्दजी! सबका निराला? पत्नी पचास-साठ-सत्तर वर्ष साथ रहे तो भी (निराला)?

मुमुक्षु : सब साथ होकर भोगेंगे?

उत्तर : सब साथ होकर भोगेंगे या नहीं? ऐ... ई... धूल में भी नहीं भोगते, सब अपने राग को भोगते हैं, भिन्न-भिन्न राग करके भोगते हैं, पैसा कहाँ भोगते हैं? पैसा कोई खा जाता है? आहा...! देखो।

**चार भाई हों तो एक ही स्थिति में नहीं रह सकते।** चार भाईयों का दृष्टान्त दिया है। है? इसमें? **चार भाई हों तो एक ही स्थिति में नहीं रह सकते। एक धनवान होकर सांसारिक सुख भोगता है।** देखो, सांसारिक सुख भोगता है अर्थात् दुःख (भोगता है)। **एक निर्धन होकर कष्टपूर्वक जीवन निर्वाह करता है, एक विद्वान् होकर देश प्रसिद्ध हो जाता है...** विद्वान् होवे तो देश में प्रतिष्ठा होती है। उसमें क्या? **एक मूर्ख रहकर सबसे निरादर पाता है।** चार भाई के चार (प्रकार)। श्रेणिक, अभयकुमार, एक साथ जीमते थे। बहुत प्रीति थी, श्रेणिक राजा को अभयकुमार के प्रति बहुत प्रीति थी और वह तो दीवानपने का काम करता था और बहुत बुद्धिमान। अभयकुमार की बुद्धि हो ऐसा बनिये लिखते हैं या नहीं? बहियों में लिखते हैं।

मुमुक्षु : ग्राहक को सम्हालना आता है?

उत्तर : सम्हालना क्या आता है? वह बुद्धिवाला था तो यह कहे हमको बुद्धि दो। किसकी बुद्धि? तुम्हें ऐसे मिल जाती होगी?

कहते हैं, उस अभयकुमार के प्रति कितनी प्रीति थी। अभयकुमार स्वर्ग में गया, श्रेणिक राजा नरक में गया। समझ में आया? एक साथ भोजन करते थे। एक नरक में गया-एक स्वर्ग में गया, कोई मोक्ष में गया। समझ में आया? दूसरे राजकुमार साथ में थे, वे मोक्ष में गये। जैसी अपनी पर्याय करते हैं, वैसा उसका फल मिलता है। एक साथ भोजन करनेवाले... शास्त्रपाठ भेद ऐसा है। एक साथ भोजन करनेवाले भी शास्त्रपाठ में भेद, एक नरक में जाते हैं और एक मोक्ष में जाते हैं - ऐसा देख। मांगीरामजी! क्या कहते हैं? देखो! कहते हैं, तू अपने परिणाम सुधार और अपना आत्मा शुद्ध आननदकन्द है - ऐसी दृष्टि करके आत्मा का ध्यान अनुभव कर, यही मोक्ष का उपाय है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया?

**जब रोग आता है, तब इस जीव को उसकी वेदना स्वयं ही सहनी पड़ती है। पास में बैठनेवाला भी इस वेदना को नहीं भोग सकता है।** पास में बैठे हो न? हाथ फेरे, हाथ। रोग का थोड़ा भाग वह ले या नहीं? कौन ले? समझ में आया? **संसार के कार्यों में भी इस जीव को अकेला ही वर्तना पड़ता है।** संसार में भी अकेला ही वर्तता है न? **सब ही संसारी जीव अपने-अपने स्वार्थ के साथी हैं। स्वार्थ न सधने पर स्त्री-पुत्र, मित्र, चाकर सब प्रीति त्याग देते हैं।** स्वार्थ न हो तो छोड़ देते हैं। नहीं, उसमें कुछ है नहीं। कमाते थे, तब तक ठीक है, अब कमाते नहीं। ठीक है या नहीं? मांगीरामजी!

मुमुक्षु : .....

उत्तर : सब होवे तो सबको ऐसा ही है। तुमको एक को 'महासुख' को छोड़े तो क्या हो गया? उसे भी अन्दर में तो ऐसा ही होता है। कहो, समझ में आया... आहा... हा...!

**दूसरों के असत्य मोह में पड़कर पापकार्य नहीं करना चाहिए...। नौका में पथिकों के समान सर्व संयोगों को छूटनेवाला अस्थिर मानना चाहिए।** एक नौका में सब बैठे हों, सब पथिक अपने-अपने घर चले जाते हैं, अपने गाँव में चले जाते हैं। साथ बैठे हों वे सब एक गाँव में जाते हैं, ऐसा है? एक नौका में बैठे हों तो एक व्यक्ति एक गाँव में जाता है, दूसरा दूसरे गाँव में जाता है, तीसरा तीसरे में; ऐसे ही एक घर में पच्चीस व्यक्ति आये एक जाता है नरक में, एक जाता है स्वर्ग में, एक जाता है मोक्ष में। जैसा अपना आत्मा का पुरुषार्थ करे वैसा उसका फल मिलता है। किसी का साथ-सहायक नहीं है। समझ में आया?

**इसलिए राग-द्वेष-मोह न करके समभाव में रहना चाहिए।** ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें दया-दान आदि विकल्प भक्ति-यात्रा का (भाव) आवे वे सब पुण्यभाव हैं, वे धर्मभाव नहीं हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग-वासना, वह पाप है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, यात्रा पुण्य है। दोनों राग से अपना आत्मा भिन्न है - ऐसा जानकर अपनी आत्मा की श्रद्धा, ध्यान करना, वही अपनी शुद्धि की वृद्धि का कारण है। वही मोक्ष का कारण है। कहो, समझ में आया?

**यदि रत्नत्रयधर्म का सम्यक् प्रकार से आराधना करे तो आप ही अकेला निर्वाण पा सकता है।** संसार के समस्त परिवारी नरक में जायें, चार गति में जाये, भले जाओ, आत्मा - अपना शुद्धस्वरूप चैतन्यमूर्ति है। समझ में आया? अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है - ऐसी उसकी रुचि / दृष्टि करके, आत्मा का ज्ञान करके आत्मा में ही लीन होना, वही रत्नत्रय एक ही मोक्ष का कारण है। वह रत्नत्रय स्वयं से होता है; किसी दूसरे से नहीं होता। अपने आत्मा के आश्रय से होता है, उसमें किसी की सहायता नहीं है; भगवान - देव-गुरु-शास्त्र भी उसमें मदद नहीं करते। समझ में आया?

एक व्यक्ति भगवान के मन्दिर में माला जपता था। 'सनोसरा' वाले अमरचन्दभाई थे न? अमरचन्दभाई थे, उमराला रहते थे न? अमरचन्दभाई विसाश्रीमाली, वे वहाँ मन्दिर में माला जपते थे, वहाँ मर गये। इसलिए ऐसा कि ओ...हो...! मन्दिर में मरे। मन्दिर में (मरे) तो क्या हुआ? माला जपते हों तो शुभभाव है, उससे पुण्य है। समझ में आया? वह धर्म-वर्म है नहीं। लोग कहते हैं ओ...हो...! बहुत भाग्यशाली हैं! ऊपर से मुर्दा उतारा। वहाँ भगवान के मुख्य मन्दिर में मर गये थे। माला जपते थे, वहीं देह छूट गयी। यह 'सनोसरा' के थे न? अमरचन्दभाई थे, विसा-

श्रीमाली, मन्दिरमार्गी। वहाँ रहते और मकान यहाँ था। हमारे उमराला में मकान बनाया, यहाँ आते थे। उन्हें लेकर 'सन-ोसरा' गये थे, ऊपर से मुर्दा उतारा तो लोग कहते हैं, ओ... हो...! सिद्धगिरि में रखे। सिद्धगिरि में (मरे परन्तु) नरक में जाये, उसमें क्या है? सिद्धगिरि में मरे और नरक में जाये। धीरूभाई! और साधारण शुभभाव होवे तो पुण्य बाँधे, उसमें कहीं कल्याण हो जाये, जन्म-मरण का अन्त आवे - (ऐसा नहीं है।) भगवान के समक्ष बैठा हो तो भी जैसा राग करे वैसा बन्ध पड़ता है। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव से मेरी चीज भिन्न है। मेरी चीज ही भिन्न है - ऐसे अपने आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करे तो उसे रत्नत्रय प्रगट होने पर उसकी मुक्ति होती है, दूसरे किसी उपाय से मुक्ति नहीं है।

**प्रत्येक जीव का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव दूसरे जीव से निराला है।** ठीक है? क्या कहा? प्रत्येक जीव-प्रत्येक जीव, उसका द्रव्य भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न और भाव भिन्न है। **प्रत्येक जीव परम शुद्ध है।** लो, उतारा है सही, कहीं दूसरा उतारा होगा, ठीक है। उसमें उतारा है, सत्तर में उतारा है - द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उतारा है। प्रत्येक जीव का परमधर्म शुद्ध है। **प्रत्येक जीव परम शुद्ध है, न उसे आठ कर्मों का संयोग है, न शरीर का संयोग है, न विभावभावों का संयोग है।** पुण्य पाप के दया-दान के भाव ये भी संयोगी चीज है; आत्मा की नहीं। वे सब विभाव परभाव हैं। ऐसे अपने अकेले स्वभाव की दृष्टि करके विचारना और मैं **सिद्ध के समान शुद्ध-निरञ्जन और निर्विकार हूँ।** इस प्रकार अपने को अकेला जानकर **अपने स्वभाव में मग्न रहना चाहिए।** श्रद्धा -ज्ञान करके स्थिर रहना, वही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई धर्ममार्ग नहीं है।

अन्त में भी कहा है, देखो! 'वृहद् सामायिक' पाठ है न? बड़ी सामायिक का पाठ है। **तू मूढ बनकर यह मिथ्या कल्पना किया करता है कि मैं गोरा हूँ, रूपवान हूँ, मजबूत शरीर हूँ, पतला हूँ, कठोर हूँ, देव हूँ, मनुष्य हूँ, पशु हूँ, नारकी हूँ, नपुंसक हूँ, पुरुष हूँ, स्त्री हूँ।** यह सब मूढ़ होकर मानता है। अत्मा ऐसा है ही नहीं। **तू अपने आत्मा को नहीं जानता है कि यह एक अकेला ज्ञानस्वभावी,...** (है) भगवान ज्ञानस्वरूप, ज्ञानस्वभाव, चैतन्यमूर्ति निर्मलानन्द **सर्व दुःखरहित अविनाशी द्रव्य है।** नाश न हो ऐसा पदार्थ है, ऐसे पदार्थ की अन्तरदृष्टि करके रत्नत्रय प्रगट करना, वह स्वयं का स्वतन्त्र कारण है। उसमें किसी की सहायता नहीं है।

**प्रश्न :- आत्माकी महिमा कैसे आवे ?**

**उत्तर :- आत्मवस्तु ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञायक तो अनन्त गुणोंका पिण्ड है, यह अखण्ड पूर्ण तत्त्व त्रिकाल अस्तिरूप है। इसका स्वरुप-इसकी सामर्थ्य अगाध पर आश्चर्यकारी है; जिसे समझे (भाव-भासन हो) तो आत्माकी महिमा और माहात्म्य आवे व रागका माहात्म्य छूट जाए। आत्मवस्तु कैसे अस्तित्ववाली है, कैसी सामर्थ्यवाली है? इसका स्वरुप रुचि-पूर्वक खयालमें ले तो इसका माहात्म्य आवे और राग व अल्पज्ञताका माहात्म्य छूट जाए। एक समयकी केवलज्ञानकी पर्याय, तीनकाल-तीनलोकको जाननेकी सामर्थ्यवाली है, तो भी वह प्रतिक्षण नयी-नयी उत्पत होती है, तो उसके धारक त्रिकाली-द्रव्यकी सामर्थ्य कितनी? इस प्रकार आत्माके आश्चर्यकारी स्वभावको यथार्थतः खयालमें ले तो आत्माकी महिमा आवे।**

**—पूज्य गुरुदेवश्री (परमागमसार—३३७)**

**पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके ७३ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.१३-१०-१९८२, प्रवचन क्रमांक-२ (विषय : मार्गदर्शन)**

**प्रश्न :— अंतरमार्ग बहुत कठिन लगता है।**

**उत्तर :— अंतरमार्ग कठिन नहीं है—सहज है, आसान है, सरल है, कठिन तो यह है कि जो हो न सके। लाखों प्रयत्न करने पर भी परमाणु आत्मा का नहीं होता, इसकारण यह कार्य कठिन कहलाता है, परन्तु आत्ममार्ग तो अन्तर प्रयत्नसे प्राप्त होता है। इसलिये जिससे जो हो सके वह उसका सरल एवं सहज कार्य है, केवल अनभ्याससे कठिन लगता है। ८३.**

(३८:४० मिनिट से)

८३. '**प्रश्न :— अंतरमार्ग बहुत कठिन लगता है।**' यह अनुसरता प्रश्न है कि यह जो अंतर्मुख होने का मार्ग है वह तो हमें कठिन लगता है।

कहते हैं कि, '**अंतरमार्ग कठिन नहीं है।**' तू मान बैठा है ऐसा नहीं है। '**सहज है, आसान है, सरल है,...**' लो, कठिन के सामने तीन शब्द लिये हैं। आसान है, सहज है और सरल है। जैसे पानी को ऊपर चढाना हो तो उसकी मशीनरी रखनी पड़े और उसमें छप्पन चीज चाहिये। परन्तु पानी को नीचे लाना हो तो कोई मशीन रखने की आ-वश्यकता नहीं है। वह पानी स्वभाव से ही नीचे ढलता है।

ऐसे आत्मा को निर्दोष होना, आत्मा को शद्ध होना वह उसका शुद्ध स्वभाव है। ढाल में जैसे पानी ढलता है,... आता है, उसका कलश आता है। १४४ गाथा के बाद वाला वह कलश है। जैसे ढाल में ढलता हुआ पानी वेग से ढाल में ढलता है। नीचे गिरते हुए पानी में शक्ति होती है, (उसमें) बीजली उत्पन्न कर सकते हैं। ये प्रपात में से करते हैं कि नहीं? वेग से। वेग अर्थात् उसके अन्दर शक्ति है, फोर्स है।

इस प्रकार आत्मा शुद्ध होता है उसमें उसकी शक्ति से उसका सामर्थ्य उसमें प्रगट होता है और शुद्ध होता है। ऐसा है। वेग से वह (पानी) नीचे ढलता है, ऐसे अंतर्मुख भी वेग से होता है। अंतर्मुख होने में शक्ति आती है। वह सरल है, आसान है, सहज है। कठिन कर-कर के जीव ने धक्का मारा है।

हमारे एक श्रीमद्जी के अनसुयायी मुमुक्षु परिचय में थे। वे कहते थे, यह सब आप की सोनगढ़ की ऊँची-ऊँची बातें हमें बहुत ही ऊँची और कठिन लगती है। बीए. एल.एल. बी जैसी। हम तो सामान्य प्राथमिक कक्षा के मुमुक्षु है। दया पाले, कषाय मन्द रखे और भक्ति करे। यह सब हम करते हैं। यह हमारा काम है। ऐसी ऊँची बातें में हमारा काम नहीं है। ठीक! अच्छी बात होगी? भाई! ऊँची बात हो तो उसका अधिक आदर होना चाहिये। तो उसको ऊँची स्थापित की और ऊँची मानी और ऊँचे स्थान में उसका स्वीकार किया गिना जाये। परन्तु स्वीकार करे कि बहुत ऊँची बात है। क्योंकि उसमें तो चले ऐसा नहीं है। उसकी सर्वोत्कृष्टता ऐसी है कि उसमें तो दूसरा कुछ चले ऐसा नहीं है। परन्तु उसे ऊँची बताकर उसको धक्का मारे, दूर करे तो तूने उसे ऊँची नहीं मानी, परन्तु तूने उसको अनादर

के स्थान में उस बात को मानी है।

अनुभवप्रकाश में तो दीपचंदजी ने स्पष्ट लिखा है कि कोई ऐसा कहता है कि इस काल में स्वरूपप्राप्ति करनी बहुत कठिन है। उसको हम कहते हैं कि स्वरूपप्राप्ति कठिन बताने वाला जीव बहिरात्मा है, स्वरूपी चाह मिटाने वाला बहिरात्मा है। चाह माने रुचि। वह स्वरूप प्राप्ति को मिटाने के लिये ऐसी बात करता है और उसका बहिरात्मपना यानी मिथ्यादृष्टिपना और अज्ञान उसका जोर करता है। इसलिये इस विषय में वह ऐसी बात करता है। अन्यथा ऐसी बात करे नहीं।

कहते हैं कि, अंतर का मार्ग कठिन नहीं है, आसान है, सहज है और सरल है। कठिन तो नहीं है, अपितु आसान है, ऐसा कहना है। आसान है वह इसलिये कि तुझे कोई बाह्य साधन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि इतनी साधनसंपन्नता हो तो मुझे मार्ग मिले। ऐसा कुछ नहीं है। खाते-पीते सुखी हो, कमाने की कोई चिंता न हो तो मार्ग आसानी से प्राप्त हो सके। अन्यथा दूसरी उपाधि में इस मार्ग का हम विचार नहीं कर सकते हैं। अतः कम से कम पहले आजीविका के साधन और बाकी सब व्यवस्थित हो जाना चाहिये। इसलिये उसका प्रयत्न करते हैं और वह करने के बाद हम यह करेंगे। कहते हैं कि तू कदापी करेगा नहीं। तेरी यह बात सच्ची नहीं है।

निवृत्त होकर सोनगढ़ रहना हो तो पहले व्यवस्था तो हो जानी चाहिये कि नहीं? यह सवाल है। कोई क्षेत्र में, आत्मा क्षेत्र के कारण प्राप्त होता है, ऐसा भगवान के मार्ग में नहीं है। सोनगढ़ तो क्या भगवान का समवसरण भी तुझे मार्गप्राप्ति में साधन हो ऐसा नहीं है। ठीक! जिनेन्द्र का समवसरण और वह भी सीमंधर भगवान का समवसरण, ठीक! महाविदेहक्षेत्र! वह महाविदेहक्षेत्र तुझे धर्म प्राप्त कराये ऐसा नहीं है और वह समवसरण भी तुझे धर्म प्राप्त कराये ऐसा नहीं है। ऐसी यह निष्पक्ष बात है. यह सब निष्पक्ष बात है, कोई पक्ष की बात नहीं है। मध्यस्थ बात है।

आत्मा का मार्ग आत्मा में है और वह आत्मा की रुचि से साध्य है। फिर हर हालत में। कोई भी संयोग हो, कोई भी परिस्थिति हो, सातवीं नर्क तो उसकी हद हो गयी। प्रतिकूलता की हद जो सातवीं नर्क है वहाँ भी यह जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। फिर दूसरे उससे न्यून प्रतिकूल संयोगों में प्राप्त न कर सके, यह सवाल ही नहीं है।

वह कब प्राप्त कर सकता है? कि मार्ग आसान है इसलिये प्राप्त कर सकता है। यदि कठिन होता तो वहाँ तो उसकी कठिनता बढ़ी होती। परन्तु ऐसा नहीं है। (नारकी को) वेदना बहुत होती है। एक तो, गाढ़ अंधेरा (होता है)। शास्त्र में नारकी का वर्णन आता है। यहाँ एक दिन बीजली चली जाये तो, गुजरात इलेक्ट्रिसीटी बोर्ड और उसके संचालक और उसका कार्य करनेवाले पर बारीश बरसाये। एक दिन भी नहीं, परन्तु कुछ घण्टे जाये उतने में। वहाँ तो हमेशा घोर अंधकार। यहाँ तो उतना अंधकार नहीं होता। क्योंकि चन्द्रमा न हो तो तारे होते हैं, दूसरी बीजली होती है। (नारकी में तो) घोर अंधकार। एक तो अंधकार.. अंधकार.. अंधकार.. गंदगी... गंदगी... गंदगी। शरीर में रोग... रोग.. पीड़ा.. पीड़ा.. पीड़ा... और जो पृथ्वी में उष्णता है और जो पृथ्वी में शीतता है,... कोई हद नहीं। यहाँ तो उसका एक कण भी नहीं है। पूरी प्रतिकूलता में और दुर्गंध.. दुर्गंध... दुर्गंध। यहाँ तो एक कण दुर्गंध की आ जाये तो मनुष्य मरने लगे।

पाँचों इन्द्रिषों के विषय की पूरी प्रतिकूलता। स्पर्श, रस, रूप, गंध से लेकर और मारो-काटो, ऊपर से मार पड़े वह अलग, वेदना हो (और मार पड़े)। यहाँ तो फोड़ा हुआ हो और डॉक्टर साफ करे तो उसे ऐसा होता है कि अरे.. रे..! मैं मर गया! एक तो वहाँ वेदना का पार नहीं है और ऊपर से मार पड़ती हो। ऐसी परिस्थिति है। सरपर हथोड़े मारते हो और दूसरी मार पड़ती हो। वह तो कुछ भी नहीं है, उससे अधिक (होती है)। तो भी वहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है।

मुमुक्षु :— ऐसी अनुकूलता हो उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता तो प्रतिकूलता में कैसे होता है?

पूज्य भाईश्री :— प्रतिकूलता में उसकी रुचि काम करती है। अंदर में ज्ञान और राग को भिन्न करता है।

मुमुक्षु :— पूर्व संस्कार होंगे?

पूज्य भाईश्री :— पूर्व संस्कार तो है ही। पूर्व संस्क-

ार है। वहाँ तो उपदेश का दूसरा प्रसंग नहीं है। इसलिये देशनालब्धि तो उस जीव को प्राप्त है। पूर्व संस्कार है यह कैसे नक्की होता है? कि वहाँ उसे वर्तमान दर्शनालब्धि का कोई निमित्त नहीं है, कोई नहीं है, कोई मुनि नहीं है, कोई भगवान का अरिहंत का योग नहीं है। अरिहंत का, मुनि का, ज्ञानी का या शास्त्र का एक भी संयोग नहीं है। चार लब्धि में देशनालब्धि तो आती ही है। तो देशनालब्धि संप्राप्त जीव है। कहीं उसने जिज्ञासा में और कुछ रुचि में आकर सुना है। तब उसे रुचा है, अव्यक्तपने भी रुचा है। फिर भले बहुत परिणाम बिगाड़कर नर्क में गया हो, परन्तु यदि स्वरूप की रुचि उत्पन्न हो, वास्तव में उसे दुःख से मुक्त होना हो तो उसका उपाय उसे प्राप्त होता है।

वास्तव में तो वहाँ क्या होता है? उसको अंतर में मुड़ने का निमित्त दुःख ही है। क्या है? वेदना है वह नारकी को सम्यक्त्व का गौणपने निमित्त है। मुख्य निमित्त नहीं है वह, गौण निमित्त गिनने में आया है। क्योंकि आयुष्य बहुत बड़े होते हैं। मानों कहीं आयुष्य का किनारा ही न आता हो। ऐसा लगता है। एक-एक क्षण व्यतीत होनी जहाँ दुष्कर लगे वहाँ तैंतीस सागर का आयु का समुद्र कैसे खत्म हो? इसलिये उसे ऐसा लगता है कि बस! यही जीव का स्वरूप है? इतना दुःख भोगते रहना? इतनी प्रचुर दुःख की वेदना ही स्वरूप है? कि इससे भिन्न कोई स्वरूप है? जहाँ अंदर के अवलोकन में (आता है कि), कोई अन्य स्वरूप है या नहीं? (ऐसा देखते ही) अंदर एकदम हलका हो जाता है। और उस दुःखभाव से भिन्न उसे वहाँ भी ज्ञान का और ज्ञानस्वभाव का और भगवान का दर्शन होता है। साक्षात् दर्शन वहाँ होता है। वह जीव अल्प काल में अरिहंतदशा को प्राप्त करता है। नारकी में से सीधा मनुष्य हो, उसको दूसरी गति नहीं होती। बस! वहाँ तो बहुत फेरफार हो गया। वह तो साधन लेकर, आराधना लेकर, साधना लेकर आया हुआ जीव है। मनुष्यत्व में तो उसकी बहुत शक्ति व्यक्त हो सकती है। सर्वसंगपरित्याग करके, मुनिदीक्षा अंगीकार करके वह पूर्ण शुद्धि को प्राप्त करता है।

कहते हैं कि, अंतर का मार्ग है वह कठिन नहीं है, परन्तु आसान है, सहज है। आसान है उतना ही नहीं, सहज भी है। बहुत भारी-भारी है ऐसा नहीं है, सहज है। लेकिन कोई ऐसा कहे कि हमें नहीं लगता है और आप को लगता है, इसमें यह क्या? हमें तो कठिन और भारी लगता है। भाई! वह तुझे जो कुछ बहिर्भावों का अभ्यास हो गया है उससे तुझी बाह्य के, राग के परिणाम आसान और सहज लगते हैं। और इस प्रकार के परिणामों का तूने अभ्यास नहीं किया है इसलिये तुझे कठिन और दुष्कर लगता है, वास्तव में है नहीं। वह तो नीचे लेंगे, '**केवल अनभ्यास से कठिन लगता है।**' प्रत्येक कार्य अभ्यास होने से आसान है, अनभ्यास से कठिन है। ये भी प्रेक्टिस कर-कर के सर्कसवाले कैसे काम करते हैं! छाती पर हाथी को खड़ा रखे! प्रेक्टिस का विषय है। आप जिस वज़नदार चीज को धक्का नहीं मार सकते, उसे खिलौने की भाँति फेंक दे। प्रेक्टिस का विषय है। जैसे प्रेक्टिस से सब आसान है, अभ्यास माने प्रेक्टिस का अभ्यास, हाँ! पढ़ने का अभ्यास करे उस अभ्यास की यहाँ बात नहीं है कि पढ़ता ही रहे माने अभ्यास किया। प्रेक्टिस का अभ्यास है। प्रेक्टिस कहो या प्रयोग कहो। लोग नहीं कहते? कि भाई! डॉक्टरी पढ़ी लेकिन अब थोड़ी प्रेक्टिस करो। उसके बाद आप को दव-ाखाना करने देंगे। यह सरकारी कानून है। वकालत का पढ़ा हो, बी.ए., एल.एल.बी., एडवोकेट करे परन्तु कुछ समय तक वह प्रेक्टिस न करे तबतक उसे जज की परीक्षा पास करने का अधिकार नहीं है, न्याय तोलने का अधिकार नहीं है। न्याय माँगना दूसरी बात है और न्याय तोलना दूसरी बात है। ऐसा है। वह अनुभवज्ञान है। अभ्यास है वह अनुभवज्ञान है। पढ़ाई का ज्ञान वह अनुभवज्ञान नहीं है, परन्तु प्रेक्टिस का ज्ञान वह अनुभवज्ञान है।

इसप्रकार सहज है और सरल है। टेढ़ामेढ़ा नहीं है, दूसरी कोई माथापच्ची नहीं है। एकमात्र अपने स्वरूप में अंतर्मुख होना इतनी ही बात है और वह अंतर्मुख होने अर्थ उसे राग का परदा भी हटा देने की जरूरत है। बीच में राग का परदा और अवरोध उसको जरूरी नहीं है। कहते हैं कि वह सरल है अथवा असरलता से विरूद्ध ऐसा सरल मार्ग है। सरलता से मनुष्यगति और मनुष्यगति में सरलता से मोक्षमार्ग की प्राप्ति। इतनी सरलता है। यह मार्ग सरल है,

चढाव-ऊतारवाला नहीं है।

'**कठिन तो वह है जो हो न सके।**' ऐसा कहते हैं, अशक्य हो उसे कठिन कहें। जैसे बालू में से तेल निकलना कठिन है। कठिन है अर्थात् अशक्य है। ऐसे जड़ पुद्गल रजकण में से सुख प्राप्त होना कठिन है। अशक्य है, कठिन है अर्थात् अशक्य है। और फिर भी तू उसका प्रयत्न नहीं छोड़ता। जो कठिन है क्या, कठिन से भी अशक्य है उसका प्रयत्न जीव छोड़ता नहीं है और जो शक्य है, सरल है और आसान है, उसका प्रयत्न नहीं करता। अज्ञान में ऐसी विपरीतता होती है, ऐसा कहना है।

'**कठिन तो वह है जो हो न सके। लाखों प्रयत्न करने पर भी परमाणु आत्मा का नहीं होता,...**' लाख प्रयत्न करे फिर भी परमाणु आत्मा का नहीं होता। इसलिये संयोग पर ममत्व कर-कर के मर जाये तो भी संयोग में से एक रजकण आत्मा का होता नहीं। और सुख के लिये चाहे जितनी तीव्र में तीव्र उसके परिणाम की स्थिति आये तो भी उसमें से एक अंश सुख की प्राप्त नहीं होगी। उसे कठिन कहने में आता है।

'**इसकारण यह कार्य कठिन कहलाता है, परन्तु आत्ममार्ग तो अन्तरप्रयत्न से प्राप्त होता है।**' अपने स्वरूप के स्वाधीन प्रयत्न से, स्ववश प्रयत्न से स्वयं का मार्ग प्राप्त होता है, उसमें उसे कोई बाह्य संयोग बाधा नहीं पहुँचा सकते। '**इसलिये जिससे जो हो सके वह उसका सरल एवं सहज कार्य है, केवल अनभ्यास से कठिन लगता है।**' विशेष लेंगे...

## दि. २२-१०-१९८२, परमागमसार बोल—८३, प्रवचन-९

'**लाखों प्रयत्न करने पर भी परमाणु आत्मा का नहीं होता।**' क्या विषय है? कि मोक्षमार्ग, अंतर सन्मुखता का मार्ग, अंतर्मुखता का मार्ग बहुत कठिन लगता है, यह विषय है। उत्तर यह दिया है कि वह कठिन नहीं परन्तु आसान है और सहज है एवं सरल है। इतनी विशेष बात की है। जैसे कोई स्थान से स्वयं दूर है तो वह ऐसा कहता है कि मुझे वह स्थान दूर लगता है। स्वयं दूर है तब क्या कहता है? कि वह स्थान मुझ से दूर है।

इसप्रकार कठिन कब लगता है इसका विचार करे तो, दूरवर्ती परिणाम में कठिनता लगती है। मोक्ष का मार्ग कठिन है, दूर है, आत्मा बहुत दूर है, आत्मा की प्राप्ति बहुत कठिन है ऐसा कब लगता है? कि जो आत्मिक परिणाम है, आत्मस्वरूप परिणाम है उससे विरूद्ध जाति के बहुत दूरवर्ती परिणाम, उसमें जीव स्थित हो तो उस जीव को ऐसा सब लगता है। आत्मा है ऐसा नहीं, परन्तु स्वयं अपने भाव में दूर हो गया है। वास्तव में तो ऐसा है।

ऐसा नहीं कहते हैं? कि हमारा सम्बन्ध था परन्तु हम कुछ कारणों से दूर हो गये हैं। दूर हो गये हैं यानी घर बदलकर कहीं दूर रहने चले गये हैं ऐसा नहीं है। जहाँ है वहीं रहते हैं। पड़ोस में रहते हो तो भी वहीं के वहीं रहते हैं। परन्तु मिलना-करना और उस भाव में प्रीति-प्रेम है उसका अभाव (है) इसलिये दूर हो गये हैं, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है न?

ऐसा ही इसमें है कि अपने ही अनंत गुणस्वरूप जो गुण की रुचि, गुण का प्रेम, गुणप्राप्ति की जो भावना, उससे विरूद्ध परिणाम है इस कारण से कठिनता लगती है, कठिनाई लगती है। यह कैसे हो? न हो सके ऐसा लगता है।

गुरुदेव कहते हैं कि ऐसा नहीं है, वास्तव में ऐसा नहीं है। हम हमारे अनुभव से तुझे विश्वास देकर बात करते हैं कि यह जो आत्मप्राप्ति का अंतर का मार्ग है वह वास्तव में कठिन नहीं है। तू भरोसा रख, तू विश्वास रख, वास्तव में कठिन नहीं है। तूने माना है उसमें तेरी भूल है। ऐसा मानने से तुझे लाभ नहीं है, ऐसा मानने से तुझे नुकसान है। क्योंकि तू कठिन मानकर उससे दूर रहेगा। कठिन मानने से उसकी प्राप्ति के उपाय में और प्रयत्न में तू नहीं लगेगा। इसलिये इस तरह मार्ग कठिन है ऐसा स्वीकार नहीं करना। मार्ग के विषय में ऐसा स्वीकार नहीं करना। कहने का मुख्य हेतु यह है।

उसके सामने कहते हैं कि, जीव पर पदार्थ में ममत्व

करता है। शरीर और शरीर के साथ संबंधित ऐसे जो अन्य पदार्थ—सचेत, अचेत, सचेत-अचेत मिश्र, उसके साथ ममत्व करता है। लाख प्रयत्न करे तो भी एक परमाणु आत्मा का नहीं होता। लाख प्रयत्न करे, क्रोड़ प्रयत्न करे। अनंत काल से अनंत प्रयत्न करता है परन्तु उससे कहीं परमाणु आत्मारूप हो अथवा आत्मा परमाणुरूहप हो, ऐसा कभी नहीं बनता। '**इसकारण वह कार्य कठिन कहलाता है,...**' अर्थात् अशक्य कहलाता है।

'**परन्तु आत्ममार्ग तो अन्तरप्रयत्न से प्राप्त होता है।**' जो अंतर्मुख का मार्ग है वह पुरुषार्थसाध्य है। पुरुषार्थ द्वारा उसकी सिद्धि हो सकती है। अनंत ने की है, तेरे जैसे अनन्त आत्माअेंने उस पुरुषार्थ से सिद्ध की है। वह कहीं अशक्य नहीं है। जिन आत्माओं ने साध्य की सिद्धि की है वह तेरे जैसे ही हैं। दूसरे यह कर सके और तू न कर सके, यह बात कहीं मानने जैसी नहीं है। बाहर में भी जो दूसरे कार्य करता है उसमें तू ऐसा विचार करता है कि यदि दूसरे कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता? ऐसा विचार कता है कि नहीं?

'**आत्ममार्ग तो अंतरप्रयत्न से प्राप्त होता है।**' वह प्रश्न करता है कि अनादि का अज्ञान है। अनादि से आत्मा को जाना नहीं, अनादि से आत्मा का सुख देखा नहीं, अनादि से परपदार्थ का सुख माना है, जाना है, अनुभव किया है तो फिर आत्मा को किस प्रकार जान सकते हैं? ऐसी अज्ञानद-शा में रहे हैं, उसे कैसे जान सकते हैं? लेकिन भाई! वह अज्ञानदशा कहीं ध्रुव वस्तु नहीं है, वह तो पलटती वस्तु है। तू अज्ञानदशा में अनादि से है लेकिन अनादि से ऐसा ही रहनेवाला है और अनादि से यूँ ही रहने लायक है, ऐसा क्यों मान बैठता है? अज्ञानदशा तो क्षण-क्षण में समय-समय में पलटती है, पलटकर ज्ञानदशा हो सकती है और वह दशा प्रयत्नसाध्य है। फिर नहीं होने का सवाल नहीं है। कैसे हो? किस प्रकार हो? यदि तुझे उसकी जरूरत दिखे, जरूरत लळगे श्रतो प्रयत्न किये बिना रहे नहीं। सवाल इतना है कि, जरूरत है या नहीं?

कल दृष्टांत लिया था न? कि केन्सर होने के बाद बीड़ी पीता है। गले का केन्सर हुआ हो। तो उसे केन्सर मिटाने की जरूरत नहीं है, उसे उस वक्त बीड़ी पीने की जरूर है। उस दृष्टांत में से ऐसा निकलता है कि मुझे तो इसकी जरूरत है, अभी मेरी यह जरूरत है। भले मृत्यु आनी हो तो आये। वह स्वीकारता है। जो होनेवाला है वह होगा, उसका अर्थ यह है कि वहाँ वह स्वीकारता है। वहाँ वर्तमान में उसे जो चाहिये उसकी जरूरत पर उसका वज़न जाता है, तब मृत्यु पर भी उसका वज़न नहीं रहता। यह तो प्रत्यक्ष देखी हुई चीज है। ऐसा है कि दर्दी को कहे कि तू इतनी परहेज पाल और यह नहीं पालेगा तो उसका अर्थ यह है कि उसे रोग नहीं मिटाना है। रोग मिटाना हो तो वह परहेज पाले बिना रहे नहीं। सीधी-सीधी बात है।

इसमें भी ऐसा ही है कि भवरोग मिटाना हो और उसे शुद्धात्मा की प्राप्ति करनी हो तो श्री गुरु कहते हैं उस अनु-सार वह वर्ते बिना रहे नहीं। ऐसा है। लिया है न? 'औषध विचार ध्यान', 'गुरुआज्ञा सम पथ्य नहीं'। उसे पथ्य देते हैं। गुरुआज्ञा है वह परहेज है, वह पथ्य है। उसके समान दूसरा कोई इस विश्व के अन्दर पथ्य नहीं है। 'गुरुआज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान'। अंतरंग विचारणा और अंतर सन्मुख की एकाग्रता, यह भवरोग मिटाने की औषधी है। मात्र औषधी ले और परहेज पाले नहीं, वह तो नहाते-नहाते भले पाँच बालदी भरकर स्नान करे परन्तु डबरा में से जूठन और गंदगी की एक चमचा भरकर सर पर डाले, चम्मच ले, लो न चमचा न ले, परन्तु इस दो बालदी से नहाया हूँ न! लेकिन दो बालदी से नहाने के बाद ये दो चम्मच डाल दी उसका क्या? वह दोनों बालदी व्यर्थ गयी। ऐसा है। इतना स्वाध्याय किया, इतना तप किया, इतना-इतना पढ़ा, विचार किया परन्तु पथ्य नहीं पाला। तो उसे अपथ्य का से ज़किया। पथ्य पालन नहीं किया तो उसने अपथ्य का सेवन किया है।

कहते हैं कि, इसलिये पर पदार्थ की प्राप्ति और पर पदार्थमें से सुख की प्राप्ति को कठिन कहा जाये, लेकिन '**आत्ममार्ग तो अंतरप्रयत्न से प्राप्त होता है।**' वह प्रयत्नसाध्य है। '**इसलिये जिससे जो हो सके वह उसका सरल एवं सहज कार्य है,...**' जिसमें बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं है, जिसमें राग की अपेक्षा नहीं है, निमित्त की अपेक्षा नहीं है। जीव का स्वयं का स्वकार्य स्वयं के स्ववश है, अपने अधीन है। ऐसे कार्य को इससे अधिक दूसरी सरलता क्या चाहिये?

ऐसा भी नहीं है कि इतना पैसा खर्च करे उसको अंदर प्रवेश करने की टिकिट मिलेगी, प्रवेशपत्र मिलेगा, ऐसा भी नहीं है। कोई बाह्य साधन की जरूरत नहीं है।

आत्मा के जो परिणाम बहिर्मुख हो रहे हैं, सत्य स्वरूप का ज्ञान करके वही परिणाम अंतर्मुख मुड़े उसमें कोई पराधीनता नहीं है। जीव को उसमें कोई पराधीनता नहीं है कि वह न कर सके। अथवा उसके लिये क़िमत चुकान पड़ती है, ऐसा नहीं है। क़िमत इतनी अवश्य चुकानी पड़ती है कि अनादि का उसका जो ममत्व है और जिस ममत्व के वश उसने अपनी सृष्टि खड़ी की है कि इतना-इतना मेरा है, यह सब मेरे हैं। यह शरीर मेरा, यह कुटुम्ब-परिवार मेरा, यह समाज मेरा और इतने-इतने संयोगवाला सो मैं, ऐसे ममत्व की पूरी गठरी छोड़ देनी पड़े ऐसा है। जहाँ उसने सर्वस्व माना है, उस सर्वस्व का उसको त्याग करना पड़े ऐसा है। इस तरह देखने पर उसको पूरी क़िमत चुकानी पड़े ऐसा है, सर्वस्व का त्याग उसके अन्दर है। क्योंकि उसने वहाँ सर्वस्व मान रखा है। वह सर्वस्व तो छोड़ना ही पड़े ऐसा है। परिणाम से, हाँ!

संयोग तो ममत्व के कारण चीपके हैं, ममत्व न हो तो भगवान समवसरण दैवी वैभव से युक्त है। कुबेर रचना करता है तब उसको स्वयं को आश्चर्य होता है कि अरे..! ऐसा तो इन्द्र ने आज्ञा की होती तो भी मैं नहीं कर पाता कि तू इतना सुन्दर बनाना। ऐसा कहा कि तू ऐसा-ऐसा वर्णन कर। आज्ञा तो इन्द्र ही करता है परन्तु उसकी कल्पना के बाहर, उसकी धारणा के बाहर वह रचना होती है (उसका) उसको स्वयं को आश्चर्य होता है। भगवान का इतना पुण्य है लेकिन  भगवान को ममत्व एक अंश नहीं है। इसलिये उस समवसरण के वैभव का परिग्रह भगवान को लागू नहीं पड़ता। कहने में आता है कि सीमंधर भगवान का समवसरण है, यह महावीर भगवान का समवसरण है, ऐसा उनको नाम से बोला जाता है (लेकिन वास्तव में) उनका कुछ नहीं है। बिलकुल ममत्व नहीं है।

कहते हैं कि, वह '**अंतरप्रयत्न से प्राप्त होता है। इसलिये जिससे जो हो सके वह उसका सरल एवं सहज कार्य है,...**' वही हो सके ऐसा (सरल कार्य है)। परपदार्थ अपना न हो सके ऐसा कठिन कार्य है और आत्मा स्वयं का अनुभव करे वह हो सके ऐसा सरल कार्य है और सहज कार्य है। ऐसा उसका स्वभाव है। सहज इसलिये लिया है कि स्वयं को अपना अनुभव करना अथवा ज्ञान का स्वसं-वेदनरूप रहना, जिस स्वसंवेदन में स्वानुभव किया जाता है, उस स्थिति में ज्ञान का रहना वह ज्ञान का सहज स्वभाव है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। पर के वेदन में जाने का उसका स्वभाव नहीं है, वह तो उसका विभाव है। वह विभाव है वह स्वभाव पर का एक बलात्कार है कि जिस कारण उसमें आकुलता उत्पन्न होती है, दुःख होता है। वह बलात् दूसरे में जाता है। जोर से, ऊलटा जोर करके दूसरे में जाता है इसलिये उसे दुःख होता है, आकुलता हो जाती है। वह उसका सहज स्वरूप नहीं है। परन्तु अपने निराकुल स्वसं-वेदन में रहना वह उसका सहज स्वरूप है। वह सहज कार्य है, वह सरल है। उसमें कोई अवरोध हो सके ऐसी कोई पर पदार्थ की शक्ति नहीं है अथवा कोई पदार्थ की ताकत नहीं है। कोई पदार्थ की पर्याय की ऐसी शक्ति नहीं है कि अपने कार्य में वह अवरोध उत्पन्न कर सके। इसलिये वह सरल है। लेकिन कठिन लगता है उसका कारण बताते हैं।

तुझे कठिन लगता है उसका कारण सिर्फ, मात्र और मात्र थोड़ा छोटा-सा इतना है कि '**अनभ्यास से कठिन लगता है।**' थोड़ा उस विषय का अभ्यसा होना चाहिये, अंतर्मुख होने का तेरा प्रयत्न होना चाहिये उस प्रयत्न का अभ्यास नहीं है। इसलिये तुझे अंतर्मुख होने का प्रयत्न करना, उस प्रयत्न का बारंबार प्रयत्न का अभ्यास नहीं है, प्रयत्न करने का अभ्यास नहीं है इसलिये प्रयत्न की सफलता भी नहीं है।

जो कार्य करना हो अथवा करने का निर्णय किया हो, करने का निश्चय हो कि यह करना ही है, किसी भी क़िमत पर करना है, कोई भी हिसाब से करना है तो तत्संबंधित पुरुषार्थ उत्पन्न हुए बिना रहे नहीं। उस ओर का जोर नहीं आता है, क्योंकि तेरा जोर विपरीत काम कर रहा है, विपरीत जोर में राग के जोर का तुझे अभ्यास है। वह विपरीत अभ्यास है इसलिये तुझे कठिन लगता है। ऐसा है।

मुमुक्षु :— कठिन उदय हो तो भी हो जाये?

पूज्य भाईश्री :— उदय की कोई शक्ति नहीं है। कर्म के परमाणु में उदय में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि अंतर्मुख होते हुए आत्मा के पुरुषार्थ संयुक्त परिणाम को जबरन परसन्मुख करे। ऐसी कोई उसमें शक्ति नहीं है।

द्रव्यानुयोग में पदार्थ की भिन्नता ही इसलिये प्रथम स्थापित की है। जब वह कर्म के परमाणु आत्मा से भिन्न है तो उस कर्म के परमाणु में जो प्रकृति का रसविपाक ाता है, वह परमाणु में आता है और जीव में नहीं आता है। वह कर्म का उदय कर्म में आता है और कर्म का उदय जीव में नहीं आता है। जड़ कर्म का उदय जड़ कर्म की सीमा में है, मर्यादा में है और उसका उदय आत्मा के परिणाम में नहीं है। तो आत्मा के परिणाम को वह मोड़े, उसकी दिशाफेर करे ऐसा कैसे बने? ऐसा बन नहीं सकता।

'**केवल अनभ्यास से कठिन लगता है।**' पुरुषार्थ का जो अभ्यास होना चाहिये अथवा जो अभिन्नता, मिथ्यात्व की ग्रंथि—गाँठ पड़ी है उसे भेदज्ञान से—भिन्नता के अभ्यास से खोलनी चाहिये। इस भेदज्ञान का जीव अभ्यास नहीं करता है इसलिये वह कठिन लगता है। भेदज्ञान का अभ्यास करनेवाले जीव को भेदज्ञान की सफलता होकर भले ही अभी स्वानुभव नहीं हुआ हो, लेकिन पुरुषार्थ करता हो तो भी उसे अपना कार्य कठिन नहीं लगता है। क्योंकि उस पुरुषार्थ में, पुरुषार्थ जिसने आरंभ किया है, पुरुषार्थ की जिसने शुरूआत की है उसके परिणाम दूरवर्ती नहीं है, समीपवर्ती परिणाम है। इसलिये उसको वह दुष्कर या कठिन नहीं लगता।

कठिन उसको लगता है कि विपरीत पुरुषार्थ में जिसका वेग चलता है, उसको यह सब कठिन लगता है। अथवा राग की रुचि में उसे वीतरागता प्राप्त करनी कठिन लगती है। क्योंकि राग की रुचि में राग की अत्यंत तन्मयता उत्पन्न होती है। इस कारण से वह कठिन लगता है, लेकिन वास्तव में कठिन नहीं है। ८३ बोल (समाप्त) हुआ।

(२२:१० मिनिट तक)

## करुणासागर पूज्य भाईश्री 'शशीभाई' की ८७वीं जन्म-जयंती

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ८७वी जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. ३०-११-१९ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. ४-१२-१९ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. ३-१२-२०१९ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु ट्रस्ट के कार्यालय में यहाँ पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चोक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

संपर्क : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४००१.

**ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अक्टूबर-२०१९) का शुल्क रसीलाबहन बक्षी, ह. शैलाबहन एवं धर्मालीबहन, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।**

## पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा

## मंगल वाणी–सी.डी.३ B

मुमुक्षु :– यह ज्ञानी की अवस्था में प्रवेश करने का द्वार है।

समाधान :– कोई भी कार्य में? बहुत ज्यादा प्रवृत्ति में जुड़ना कम कर दे, ऐसा कहते हैं। फिर उसमें शोक लिया है?

मुमुक्षु :– माताजी! उसमें ऐसे लिया है, कोई भी काम के प्रसंग मे अधिक शोच में पड़ना, ज्याद विचार करने में अथवा ज्यादा चिंता में..

समाधान :– शोच.. शोच, ठीक!

मुमुक्षु :– शोच में पड़ने का अभ्यास कम रखना, ऐसा करना अथवा होना वह ज्ञानी की अवस्था में प्रवेश करने का द्वार है।

समाधान :– ज्ञानी की अवस्था में? कोई भी प्रसंग में बहुत ज्यादा कोई कार्य में शोच यानी उसके विचार करते रहना, बहुत ज्यादा विचार करनेसे उसमें ऐसी एकत्वबुद्धिसे विचार करनेसे नुकसान होगा। बहुत ज्यादा प्रवृत्ति और बहुत ज्यादा विचार करनेसे तुझे जो अन्दर जाना है, आत्मा न्यारा है, ज्ञायक है, कोई भी विकल्प आत्मा का स्वरूप नहीं है, यह तुझे जानना है तो उसमें तुझे नुकसान होगा। प्रवृत्ति का बहुत ज्यादा रस लग जायेगा तो, ऐसा कहते हैं। बहुत प्रवृत्ति के रस में, विचार में.... प्रयोजनभूत हो वह ठीक है, अप्रयोजनभूत में अधिक ज्यादा विचार कोई प्रवृत्ति के बहुत ज्यादा विचार करना वह तो (नुकसारनकारक है)। अन्दर में मुमुक्षु हो उसे, मेरे आत्मा का (हित) कैसे हो, ऐसा होना चाहिये।

मुमुक्षु :– बाहर की बात है? बाह्य प्रसंगों की बात है। कोई भी काम के प्रसंग में...

समाधान :– चाहे जो काम के प्रसंग में, बाह्य प्रसंग के बहुत विचार करनेसे, उसका शोच करना, उसके बहुत विचार करनेसे उसमें रुक जाने का कारण होगा और तेरे आत्मा के विचार उसमें अटक जायेंगे, ऐसा कहते हैं। आत्मा के विचार अटकने का कारण बनेगा, बाह्य कार्यों में रुकनेसे। निष्प्रयोजन के विचार करनेसे बाहर ही बाहर के कार्य, इसका ऐसा करुँ, वैसा करुँ, सब लौकिक कार्य में ज्यादा विचार करना, तेरे आत्मा के विचारों में नुकसान का कारण होगा। उसका बहुत रस लगेगा तो।

मुमुक्षु :– आत्मा सम्बन्धित ज्यादा विचार करनेसे, ज्यादा चिन्ता करनेसे, ऐसा कुछ नीं कहना चाहते।

समाधान :– ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :– यहाँ तो खास बाहर की ही बात है।

समाधान :– हाँ, बाहर की बात है। आत्मा सम्बन्धित ज्यादा विचार करना, ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। आत्मा का निर्णय करने के लिये जो विचार (चले), श्रुतसे नक्की करने के विचार आये वह तो एक निर्णय दृढ़ होने का कारण होता है। अन्दर अभी कुछ प्रगट नहीं हुआ है। ज्यादा विचार करके तत्त्वनिर्णय होने का कारण होगा। तत्त्व निर्णय होगा। बहुत ज्यादा जो आत्मा सम्बन्धित, जिसमें आत्मा को लाभ हो वैसे विचार। बाकी निष्प्रयोजन तर्क और कुतर्क में रुकना (वह ठीक नहीं है), उसमें हेतु आत्मा का होना चाहिये।

हेतु मात्र जानने के लिये हो या अपने यह जान लो, पढ़ लो, उसके तर्क और कुतर्क इत्यादि किया करे तो वह तो कुछ लाभ का कारण नहीं है। आत्मा के लिये होना चाहिये। इसका ऐसा अर्थ होता है, इसका ऐसा अर्थ होता है, इसका यह अर्थ होता है, ऐसे तर्क (करता रहे), आत्मा को लागू पड़े, स्वभाव को लागू पड़े ऐसे (नहीं), कुतर्क करता रहे वह कोई आत्मा को लाभ का कारण नहीं होता।

मुमुक्षु :- आत्मा के यथार्थ निर्णय हेतु चाहे जितना समय विचार करना पड़े वह तो आत्मा का निर्णयः

समाधान :- वह आत्मा के निर्णय के लिये है, चाहे जितने विचार करे। उसका अन्दर मंथन किया करे, खुद को जबतक बैठे नहीं तबतक। मुझे आत्मा का स्वरूप कैसे बैठे? उसके द्रव्य का, गुण का, पर्याय का चाहे जितनी भी बार निर्णय करने हेतु विचार करे, आत्मा का प्रयोजन साधने के लिये, जबतक नक्की हो तबतक पीछे लगकर विचार करके उसका अंत लावे। चाहे जितना समय लगे, वह नुकसान का कारण नहीं होता, क्योंकि वह आत्मा के लिये है। लेकिन ज्ञान के खातिर ज्ञान प्राप्त करना, उसमें आत्मा का हेतु नहीं है। अपने कुछ जानते हैं, अनेक तर्क और कुतर्क (करके उसमें) रुकना वह आत्मा के लिये नहीं है। वह मात्र ज्ञान करने के लिये है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक कार्य के पीछे प्रयोजन आत्मा का होना चाहिये।

समाधान :- आत्मा का होना चाहिये। अथवा आत्मा भिन्न है, आत्मा न्यारा है ऐसी परिणति प्रगट नहीं होती हो तबतक शास्त्र के विचार में रुके, शास्त्र स्वाध्याय में रुके वह अलग बात है। अन्दर आगे नहीं बढ़ सकता है इसलिये देव में, गुरु में, शास्त्र में रुकता हो। क्योंकि जिज्ञासा आत्मा की है। लेकिन अन्दर पुरुषार्थ इतना नहीं कर सकता है तो श्रुत के विचार में रुके तो वह नुकसान का कारण नहीं है। शास्त्र स्वाध्याय में उसके विचार करे, उसके प्रश्न करे, उसके उत्तर करे, ऐसा करे उसमें नुकसान नहीं है। लेकिन जानने के लिये जान ले और तर्क-कुतर्क गलत प्रकारसे करने, वह कोई लाभ का कारण नहीं होता।

मुमुक्षु :- शोच करने का अभ्यास कम करना, क्योंकि वह ज्ञानी की अवस्था में प्रवेश करने का द्वार है। यानी शोच कम करना वह ज्ञानी की अवस्था में प्रवेश करने का द्वारा है, ऐसा कहते हैं?

समाधान :- प्रवेश करने का द्वारा यानी तू बाहर के विचार में ऐसी हदसे ज्यादा निष्प्रयोजन लौकिक प्रवृत्ति और लौकिक विचार में रुकेगा तो तुझे.. क्या (कहा)? ज्ञान की अवस्था में...?

मुमुक्षु :- प्रवेश करने का द्वार है, द्वार।

समाधान :- ज्ञानी की अवस्था में प्रवेश करने का द्वार यानी रोकने का द्वार.. ऐसा कहना चाहते हैं?

मुमुक्षु :- प्रवेश करने का द्वार है। यानी तू शोच कम करना वह प्रवेश करने का द्वार है।

समाधान :- हाँ, कम करना, शोच कम करना। ऐसे विचार तू कम करना। क्योंकि वह सब प्रवृत्ति में तू रुकेगा तो तेरे आत्मा का कब (करेगा)? ज्ञान की दशा तू अंतरसे कब प्रगट करेगा? ऐसी सब प्रवृत्ति तो संसार में आती ही रहेगी। तो फिर तू तेरे आत्मा का कब करेगा? ये मनुष्यजीवन ऐसे ही चला जा रहा है। सब लौकिक व्यवहार, हदसे ज्यादा जँजाल, किसका व्यवहार रखना, ये करना, वह करना,... वह तो श्रीमद् में आता है न? अल्प आवकारी होना, अल्प भाषण करना, अल्प यह करना, ऐसा सब आता है। अर्थात् तेरे लौकिक व्यवहार संक्षिप्त कर देना। तो तुझे आत्मा का कुछ विचार करने का अवकाश मिलेगा। बाह्य बड़प्पन लेने के लिये, लौकिक में बड़ा होना, बाह्य सब निष्प्रयोजन और चारों ओर खुशामद करके बड़ा होना, वह सब करनेसे तेरे आत्मा का कब होगा? ऐसे सब लौकिक विचार करना कम करना। यह मनुष्यजीवन चला जाता है, तेरे आत्मा के लिये तुझे समय कब मिलेगा? अन्दर ज्ञानदशा प्रगट करने का। बहुत बाह्य व्यवहार और सब लौकिक बहुत बड़ा कर दिया हो तो तुझे आत्मा का समय कब मिलेगा? उसे कम कर देना। ऐसा बहुत होता है न, व्यापार बहुत बढा दे, पुत्र, पुत्री आदि जँजाल बढ़ा देगा तो तेरे आत्मा का कब करेगा? तुजे उसके लिये कब समय मिलेगा?

मुमुक्षु :- एक और जगह श्रीमद्जीने लिखा है, दृश्य को अदृश्य किया और अदृश्य को दृश्य किया ऐसा ज्ञानीप-

ुरुष का अनन्त ऐश्वर्य वीर्य कह सकने योग्य नहीं है।

समाधान :- दृश्य को अदृश्य किया। ये सब जो दिखता है उसे अदृश्य किया। अदृश्य को दृश्य किया (अर्थात्) जो दिखता नहीं है लेकिन अन्दर शक्ति में है। और यह सब जो स्थूल आँखोंसे दिखता है उन सबको अदृश्य कर दिया। यानी उन सबपरसे उपयोग के वापस खींँच लिया। दृष्टि को अन्दर की। बाह्य दृष्टि को उठा ली। और अन्दर जो अदृश्य दिखाई नहीं देता कि आत्मा क्या है, उसकी शक्ति क्या है, वह दिखता नहीं उसे खुदने दृश्य किया कि मैं यह ज्ञायक ही हूँ, ये रहा, मैं ज्ञायक हूँ, इस ज्ञायक में परद्रव्य नहीं है, विभाव नहीं है। मेरे ज्ञायक में कुछ नहीं है, मैं तो ऊससे दूर हूँ। यह सब जो दिखाई देता है मेरे स्वरूप में अंतर में नहीं है। एकत्वबुद्धिसे माना है। सब भिन्न है, सब ज्ञेय मेरेसे भिन्न है। मैं ज्ञायक भिन्न हूँ। यह दृश्य दिखाई देता है उसे स्वयं से भिन्न किया। उसे अदृश्य किया, वह कोई मेरा स्वरूप नहीं है। मैं उससे भिन्न हूँ। जो अदृश्य आत्मा दिखाई नहीं देता उसे दृश्यमान किया कि मैं यह आत्मा ये रहा। उस आत्मा को प्रगट किया, आत्मा की स्वानुभूति की। वह ज्ञानी का ऐश्वर्य आश्चर्यकारी है, ऐसे लिया है न? यह उन्होंने जो अपूर्व पुरुषार्थ करके अन्दरसे प्रगट किया वह यथार्थ में आश्चर्यकारी है, ऐसा कहते हैं। दृश्य को अदृश्य किया और अदृश्य को दृश्य किया।

आता है न? मुनिओंका। जगत के जीव जहाँ जाग रहे हैं, वहाँ मुनि सो रहे हैं और मुनि जहाँ जाग रहे हैं, जहाँ मुनि जागते हैं, वहाँ ये सब सो रहे हैं। ऐसा यह है। दृश्य को अदृश्य किया। ये सब दिखाई देता है वह सब नहीं है, ये सब मेरे में नहीं है। वह उसमें है, मैं मुझमें हूँ। जो ज्ञायक दिखाई नहीं देता, ज्ञायक को प्रगट किया उसने अंतर में गहराई में जाकर स्वानुभूति प्रगट की। उसके मूल में जाकर विकल्प-से भिन्न होकर, अन्दरसे भेदज्ञान करके भेदज्ञान की धारा प्रगटकर अन्दर स्वानुभूति को प्रगट की। अन्दर निर्विकल्प दशा में स्वानुभूति जो आत्मा की, उसे प्रगट की। जो अदृश्य था, जो अनन्त कालसे दुर्लभ था उसे प्रगट किया। अदृश्य को दृश्य किया। स्वयं तो दृश्यमान है लेकिन स्वयं भूल गया है। उसे स्वानुभूति में प्रगट किया। उसे दृश्यमान किया, इन सबको अलग किया। यह उनका कोई ऐश्वर्य..?

मुमुक्षु :- अनन्त आश्चर्यकारक अननन्त ऐश्वर्य वीर्य वाणी से कह सकने योग्य नहीं है।

समाधान :- वाणीसे कैसे कहें? पूरा परिवर्तन किया। जो अनन्त कालसे नहीं किया था वह उसने परिवर्तन किया। यह उनका पुरुषार्थ कोई अपूर्व है। लेकिन स्वयं का स्वभाव है। स्वभाव प्रगट किया है। लेकिन अनन्त कालसे दुर्लभ हो गया था इसलिये उसका आश्चर्यकारी पुरुषार्थ है। इस अपेक्षासे। समझ पीछे सब सरल है, समझने के बाद सरल है। लेकिन अनन्त कालसे प्रगट नहीं किया है इसलिये दुर्लभ है। इसलिये उसका आश्चर्यकारी पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं।

दृश्य को अदृश्य करना, उसका पुरुषार्थ कितना होगा तब होता है। ये जो दृश्य है उससे भिन्न हो जाता है। सबसे भिन्न हो जाता है। दृष्टि को अन्दर ले जाता है। इन सबसे एकदम निराला हो जाता है, उसका रस ऊतर जाता है। निराला होकर अन्तर में जाता है। अन्तर में उसे कोई अपूर्वता लगती है। अन्तरसे आत्मा आश्चर्यकारी आत्मा प्रगट होता है और उसकी स्वानुभूति प्रगट होती है। ये सब छूट जाये इसलिये शून्य नहीं हो जाता, लेकिन आश्चर्यकारी विभूति अंतरमें-से प्रगट होती है। ये सब छूट जाता है और उपयोग अन्दर में जम जाता है। यह उनका कोई आश्चर्यकारी पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :- वीर्य कहकर पराक्रम कहना चाहते हैं।

समाधन :- हाँ, उसका पुरुषार्थ कोई अलग है। शुभभाव का पुरुषार्थ जीवने बहुत बार किया है। अशुभसे थककर शुभ में आया, शुभ में ऐसे उच्च कोटि के शुभभाव किये, मुनि हो गया, सब किया, पंच महाव्रत पाले, सब किया लेकिन शुभभावों में रुक गया। लेकिन शुभसे भी भिन्न जो शुद्धात्मा उस शुभ को भी दृश्यमेंसे निकालकर अन्तर में जो अदृश्य है उसे दृश्य किया। श्रुत का चिन्तवन भी जहाँ रहता नहीं और मात्र निर्विकल्प दशा को वह दृश्यमान करता है। इसलिये वह उनका पुरुषार्थ कोई पुरुषार्थ है, ऐश्वर्य कोई अलग है। लेकिन अभी दशा अधूरी है इसलिये बाहर आते हैं इसलिये श्रुत का चिंतवन इत्यादि शुभभाव में होता है। लेकिन वह निराले हैं, उसे हेयबुद्धिसे मानते हैं।

मुमुक्षु :- अन्दर जो शुभभाव होते हैं वह भी दृश्य है।

समाधान :- दृश्य है। उस दृश्य को भी अन्दर में भिन्न होकर स्वरूप में जम जाये तब तो सब अदृश्य हो जाता है। स्वरूप में जहाँ अन्दर जम गया, वहाँ तो उसे कुछ दिखता नहीं, अकेला आत्मा ही दृश्यमान है। बाहर आये तब उपयोग बाहर आया, दिखाई दे, लेकिन स्वयं भिन्न है। उन सब में एकत्वबुद्धि थी, ये सब मुझसे भिन्न है। ये कोई मेरा स्वरूप ही नहीं है, मैं भिन्न हूँ। अदृश्य, दूर है मुझसे। एक ज्ञायक ही उसे, रात-दिन उसे ज्ञायक ही दृष्टि में दिखाई देता है कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। उपयोग भले बाहर जाये, उसकी दृष्टि में एक ज्ञायक ही दिखाई दे रहा है। प्रतिक्षण, निरंतर-बिना अंतर, जागते, सोते, बैठते, स्वप्न में एक ज्ञायक दिखाई देता है। (बाहर में सब) दिखाई दे लेकिन फिर भी उससे दूर है और अन्दर स्वानुभूति में तो अदृश्य ही हो गया है। अकेला आत्मा दृश्यमान है। बाहर आये तो भी आत्मा ही दृश्यमान है। ये सब तो गौण है। भिन्न है, आत्मा उससे भिन्न दृष्टिगोचर होता है।

मुमुक्षु :- बाहर आते हैं तब भी वास्तव में तो दृश्यरूप तो अपना आत्मा ही है।

समाधान :- आत्मा ही दृश्यरूप है, यह सब अदृश्य है। उपयोग में दिखे तो भी उसे तो भिन्न ही भासित होता है।

मुमुक्षु :- मुझे हीराभाईने कहा कि कोई प्रश्न हो तो पूछीये। मैंने कहा कि, पंद्रह मिनट बहिनश्री बोलेगी उसमें मुझे समाधान मिलेगा। प्रश्न की कोई जरूरत नहीं है।

समाधान :- कोई कुछ पूछता है तो निकलता है। मैं अपनेआपसे कुछ बोलती नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी की एक पद्धति है कि कुछ पूछें तो उनके श्रीमुखसे कुछ बात नीकलती है। मैं तो ऐसा मानता हूँ, मेरी प्रार्थना स्वीकार हुई है और आप पंद्रह मिनट बोलने लगे। : आप जो कहते हो वही समाधान है।

समाधान :- ऐसे कोई महेमान आते हैं... कोई महेमान हररोज आते हैं, कुदरती होता है, उसमें कई बार बन्द भी हो जाता है। ऐसा कोई बार होता है।

मुमुक्षु :- उसमें कुछ नहीं। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो तो उसमें क्या हो गया? आप की करुणा है वह तो दिखाई देता है।

समाधान :- आज तो बन्द रखने जैसा था, फिर भी चालू रखा। कोई महेमान आयेंगे तो? ऐसा समझकर चालू रखा। थोड़े दिनसे श्रम था इसलिये। दो दिन मन्दिर गयी थी।

मुमुक्षु :- वह सब बात मैंने कही। भाई को लाते वक्त ही मैंने कहा, आज कदाचित् गुंजाईश कम है। माताजी दो दिनसे मन्दिर पधारे हैं और पाँच दिनों का श्रम लगा है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी समाधान तो करते हैं, लेकिन समाधान को खुद काम में नहीं ले तो समाधान होता नहीं। आप जो कुछ बोलती हों उसमें मुझे समाधान हो जाता है। इसीमें समाधान खोजना है, समाधान बाहर कहाँ है।

समाधान :- समाधान खुद करे तो होता है, अंतर में (समाधान) है। जिसकी तैयारी हो और उसमें जिसे कुछ विचार आते हो, उसमेंसे पूछे इसलिये उसके जवाब आते हैं। इसलिये कुदरती थोड़ा दीर्घ स्पष्टीकरण किया जाता है इसलिये सहज ही हो जाता है।

मुमुक्षु :- उसमें सब समाधान है। आधे घण्टे मैं माताजी, इतना निकलता है कि हमें तो ऐसा लगता है कि हम गुरुदेव के पास ही बैठे हैं।

समाधान :- गुरुदेव तो गुरुदेव ही थे, वह तो अलग बात थी। सभी के प्रश्न आते हैं इसलिये जवाब देती हूँ।

मुमुक्षु :- वर्तमान परिस्थिति में गुरुदेव की कमी आपसे पूरी होती है, मुझे इतना कहना है। और अभी-अभी तो दो-चार पत्र आये थे उसके जवाब में मैं तो लिखता हूँ कि, पहले गुरुदेव के समय में रहने जैसा था, वैसा अभी फिरसे (रहने जैसा है।)

## (पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित पत्र)

आशा है परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव सुख-शान्ति में विराजते होंगे। इस माह के गुजराती 'आत्मधर्म' में अनुभव रस की भीगी हुई वाणी व प्रसत मुद्रा देखकर चित्त डोल उठा। आपने फरमाया है :-

''अमारो के. (केवल) ज्ञाननो ध्वज फरकी रह्यो छे। केवल ज्ञाननो झण्डो फरकावता-फरकावता अल्प काले मोक्षमां जशुं।'' - इन वचनों को बारम्बार रस लेकर भी वृत्ति तृप्त नहीं हुई।

अधिक क्या लिखूँ? पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि ''ज्ञानीने रागादि भावो पोताना स्वभावपणे ज़रा पण भासता नथी, स्वरूपनी बाहर ज भासे छे'' - यही वेदन हम सब को दृढ़तर होता जावे, यह ही भावना।

धर्मस्नेही
निहालचंद्र सोगानी

४८

कलकत्त, २३-१२-१९६३

आत्मोन्मुखी....शुद्धात्म सत्कार।

यह पहुँचने पर आपका आया हुआ पत्र देखा। भगवान श्री जयसेन आचार्य की गाथा ३३८-३९ की टीकामें से 'अपरिणामी' सम्बन्धित लाईनें आपने अद्भुत कर लिखी, उन्हें वांचकर बहुत ही प्रमोद हुआ।

सांख्यानुसारी शिष्य, अभिप्राय में निश्चय-व्यवहारमयी आखे प्रमाणरूप अनेकान्तस्वरूप द्रव्य को एकान्ते अपरिणामी समझकर, जैनागम में भी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव को अपरिणामी कहा गया है, ऐसा कहता है - जिसका समाधान आचार्यदेव ने किया है : ''परन्तु व्यवहारनय से परिणामी है,'' ''शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से अपरिणामी है''। इस बात को रखकर, व्यवहारअंग नहीं समझनेवाले शिष्य को 'परन्तु' शब्द मूककर परिणमनरूप व्यवहार भी बताया है।

'निष्क्रिय' भाव व शब्द के लिये आपने आचार्यश्री की गाथा-३२० की टीका वह बताई थी व पूज्य गुरुदेवश्री के मुखारविन्द से सोनगढ़ में भी रात्रि चर्चा समय इसका स्पष्टीकरण हुआ था।

इस प्रकार निष्क्रिय व अपरिणामी, त्रिकाली-सदृश्य परम शुद्धनय का विषय - दृष्टि का विषय - द्रव्य मैं हूँ, इसका आगम आधार तपासकर आपने बताया, इससे बहुत आनन्द हुआ।

श्री योगीन्द्रदेव के 'परमात्मप्रकाश' श्लोक नं. ६८ पर श्री ब्रह्मदेव की टीका, पं. दौलतरामजी के अनुवाद सहित, को शीघ्र देखूँगा। साथ ही श्री जयसेन आचार्य की 'टीका-प्रति' यदि यहाँ मिल गई तो उक्त गाथा सहित पूरी देखने का विचार है। जो कि पहले मेरी देखी हुई नहीं है।

अत्रुटक भावे सहजानन्द में मग्न रहो, यह ही भावना है।

मोक्षेच्छुक
निहालचंद्र

**स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित**

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

# पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

४६

कलकत्ता, २७-२-१९६३

ॐ

**श्री सद्गुरुदेवाय नमः**

आत्मार्थी.....शुद्धात्म सत्कार।

श्री लालचन्दभाई की परिणति में मुख्यतया अध्यात्ममन्थन चलता है। अभी बम्बई में आए भाईयों के पत्र में भी पूर्व अवसर के उनके वहाँ के वांचन में ऐसी परिणति का जिक्र आया है। अतः चित्त प्रसत होता है। उन्हें, डॉ. चन्दुभाई व अन्य सब मिलनेवाले साधर्मी भाईयों से मेरा धर्मस्नेह कहना।

यही भावना है कि परम उपकारी श्री गुरुदेव की छत्रछाया में हम सब मुमुक्षु अपने नित्य स्वक्षेत्र में अडिग जमे रहें। जिस (स्वधाम) की अपेक्षा परिणाम मात्र केवलज्ञानादि परतत्त्व हैं। ऐसा होते ही नित्य व क्षणिक दोनों भावों का अनुभव प्रतिसमय एक ही काल होता रहेगा, जो कि गुरुदेव का अभिप्राय है।

''करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनि या अनन्त सुख भरै है।।''

धर्मस्नेही निहालचंद्र

४७

कलकत्ता, १७-१०-१९६३

**चैतन्यमर्ति श्री सद्गुरुदेवाय नमः**

आत्मार्थी....शुद्धात्म सत्कार।

पत्र आपके समय-समय पर तीन मिले। अब मेरा शारीरिक स्वास्थ्य ठीक है। करीब १ माह पलंग पर रहना हुआ। चिन्ता अथवा राग तो स्वयं को हानिकारक है। स्व में अथवा पर में अकार्यकारी है। अतः हर समय स्वभाव-बल से सहज निषेधपूर्वक होवे तो (भी विकल्प का) फल आदरणीय नहीं हो सकता।...

इन दिनों साधर्मी भाईयों का पत्र व्यवहार कुछ बढ़ा है। परन्तु सहज विकल्प निमित्ते जवाब लिखीज जावे वह ही अच्छा है। अतः जवाब देरी आदि की प्रतीक्षा अधिक नहीं रखना ही अच्छा है।

**(शेष अंश पृष्ठ संख्या—१६ पर)**

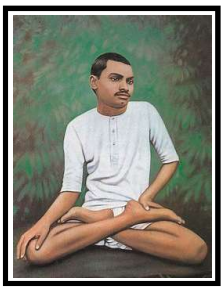

## परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

२०२

बंबई, माघ वदी ३, १९४७

सुज्ञ मेहता चत्रभुज,

जिस मार्गसे जीवका कल्याण हो उसका आराधन करना 'श्रेयस्कर'है, ऐसा वारंवार कहा है। फिर भी यहाँ इस बातका स्मरण कराता हूँ।

अभी मुझसे कुछ भी लिखा नहीं गया है, उसका उद्देश इतना ही है कि संसारी सम्बन्ध अनन्त बार हुआ है; और जो मिथ्या है उस मार्गसे प्रीति बढानेकी इच्छा नहीं है। परमार्थ मार्गमें प्रेम उत्पन्न होना यही धर्म है। उसका आराधन करें।

वि. आज्ञाकारीके दंडवत्

२०३

बंबई, माघ वदी ३, १९४७

ॐ सत्स्वरुप

सुज्ञ भाई,

आज आपका एक पत्र मिला। इससे पूर्व तीन दिन पहले ऐक सविस्तर पत्र मिला था। उसके लिये कुछ असंतोष नहीं हुआ। विकल्प न कीजियेगा।

आपने मेरे पत्रके उत्तरमें जो सविस्तर पत्र लिखा है, वह पत्र आपने विकल्पपूर्वक नहीं लिखा। मेरा वह लिखा हुआ पत्र (१९८) मुख्यतः मुनिपर था। क्योंकि उनकी माँग निरन्तर रहती थी।

यहाँ परमानंद है। आप और दूसरे भाई सत्के आराधनका प्रयत्न करें। हमारा यथायोग्य मानें। और भाई त्रिभोवन आदिसे कहें।

वि. रायचंदके यथायोग्य।

२०४

बंबई, माघ वदी ७, मंगल,१९४७

यहाँ परमानंद वृत्ति है। आपका भक्तिपूर्ण पत्र आज प्राप्त हुआ।

आपको मेरे प्रति परमोल्लास आता है, और वारंवार इस विषयमें आप प्रसन्नता प्रगट करते हैं; परन्तु अभी हमारी प्रसन्नता हमपर नहीं होती, कयोंकि यथेष्ट असंगदशासे रहा नही जाता; और मिथ्या प्रतिबंधमें वास है। परमार्थके लिये परिपूर्ण इच्छा है, परन्तु ईश्वरेच्छाकी अभी तक उसमें सम्मति नहीं है; तब तक मेरे विषयमें अंतरमें समझ रखियेगा, और चाहे जैसे मुमुक्षुओंको भी नामपूर्वक मत बताइयेगा। अभी ऐसी दशामें रहना हमें प्रिय है।

आपने खंभात पत्र लिखकर मेरा माहात्म्य प्रगट किया, परन्तु अभी वैसा नहीं होना चाहिये। वे सब मुमुक्षु हैं। सच्चेको कितनी ही तरहसे पहचानते हैं, तो भी उनके सामने अभी प्रगट होकर प्रतिबंध करना मुझे योग्य नहीं लगता। आप प्रसंगोपात्त उन्हें ज्ञानकथा लिखियेगा, तो मेरा एक प्रतिबंध कम होगा। और ऐसा करनेका परिणाम अच्छा है। हम तो आपका समागम चाहते हैं। कई बातें अंतरमें घूमती हैं, परन्तु लिखी नहीं जा सकती।